

## बुजदिल और गुलाम दिमाग की देशभक्ति

प्रेम सिंह

(रूस-उक्रेन युद्ध दूसरे सप्ताह में प्रवेश कर गया है। आम शिकायत है कि युद्ध के बारे में अमेरिका अपना एकतरफा नैरेटिव चला रहा है। भारत में भी युद्ध के पहले दिन से सरकार और नागरिक समाज के कहीं परस्पर पूरक और कहीं अंतर्विरोधी लघु-नैरेटिव मीडिया और सोशल मीडिया में तैर रहे हैं। यह लेख फरवरी 2019 का है। साथी रामस्वरूप मंत्री ने याद दिलाया कि लेख रूस-उक्रेन युद्ध के संदर्भ में भी प्रासंगिक है। लिहाज़ा, आपके पढ़ने के लिए फिर से जारी किया गया है।)

1.

आधुनिक औद्योगिक सभ्यता दो विश्वयुद्ध देख चुकी है। युद्ध विशेषज्ञ अभी तक तय नहीं कर पाए हैं कि दो विश्वयुद्धों में कितनी मौतें - फौजी और नागरिक - हुईं। दोनों विश्वयुद्धों में मारे गए लोगों का अनुमानित आंकड़ा 10 से 15 करोड़ के बीच में बताया जाता है। पहले और दूसरे विश्वयुद्ध के आगे-पीछे कई बड़े-छोटे युद्ध हुए हैं। सभी उपनिवेशित देशों ने अपने-अपने स्वतंत्रता युद्ध लड़े हैं। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद 1946 से सोवियत रूस के विघटन तक चले शीतयुद्ध के दौर को भी विद्वानों ने एक खास तरह का विश्वयुद्ध कहा है और उसमें मारे जाने वाले लोगों की भी बड़ी संख्या बताई है। शीतयुद्ध के दौरान और बाद भी कई सीधे और प्रॉक्सी युद्ध हुए हैं, जिनमें दो देशों से लेकर पांच-छह देशों की भागीदारी रही है। कई युद्धों, जैसे युगोस्लाविया के विघटन के बाद हुए आंतरिक संघर्षों में गृहयुद्ध और नस्ली नरसंहार का मिश्रण हो गया है। पिछले कुछ दशकों में इस्लामी आतंकवादियों ने युद्ध और गृहयुद्ध को मिला कर युद्ध को एक अलग आयाम दे दिया है। इसके चलते 'आतंक के खिलाफ युद्ध' (वार अगेंस्ट टेरर) नाम से एक नया युद्ध शुरू हुआ है, जिसका विस्तार विश्वव्यापी है।

पहले विश्वयुद्ध में रासायनिक हथियारों का प्रयोग तो हुआ था, लेकिन परमाणु हथियारों का नहीं। दूसरे विश्वयुद्ध में अमेरिका ने जापान के हिरोशिमा और नागासाकी शहरों पर परमाणु बम गिरा कर आने वाले समय में अपने चक्रवर्तित्व की घोषणा कर दी थी। तभी से दुनिया जहां एक ओर परमाणु युद्ध के खतरे में जी रही है, वहीं दूसरी ओर परमाणु हथियारों को तीसरे

विश्वयुद्ध को रोकने का एक बड़ा निवारक (डेटेरेंट) भी माना जाता है. हालांकि हथियार-निर्माता देश एक से बढ़ कर एक एकसद्रीम वेपन्स बनाते जा रहे हैं. इस बीच तीसरे विश्वयुद्ध की चर्चा भी लगातार होती रही है. दूसरे विश्वयुद्ध की समाप्ति के समय से ही माना जाता है कि यूरोप और अमेरिका ने यह फैसला कर लिया था कि तीसरा विश्वयुद्ध युद्ध उनकी धरती पर नहीं लड़ा जाएगा. अल्बर्ट आइन्स्टीन ने कहा है, "मुझे नहीं मालूम तीसरा विश्वयुद्ध किन हथियारों से लड़ा जाएगा, लेकिन चौथा विश्वयुद्ध छड़ियों और पत्थरों के साथ लड़ा जाएगा."

भारत ने भी युद्धों की इस सभ्यता में कुछ हिस्सेदारी की है. कई युद्धों और उसके बाद संधियों के माध्यम से ब्रिटेन ने भारत को अपना उपनिवेश बनाया. ब्रिटेन का उपनिवेश होने के नाते दोनों विश्वयुद्धों में भारत की भी सीमित हिस्सेदारी रही. 1857 और 1942 में उसने उपनिवेशवादी सत्ता के खिलाफ सीधा युद्ध किया. दूसरे विश्वयुद्ध के बीचों-बीच सुभाषचंद्र बोस के नेतृत्व में धुरी (एक्सिस) देशों के साथ सहयोग बना कर आज़ाद हिंद फौज ने भी अपने ढंग का भारत की आज़ादी का युद्ध लड़ा. 1857 के संघर्ष में लाखों भारतीयों ने अपने प्राणों की बाज़ी लगाई. 1942 में भी, डॉ. लोहिया के अनुसार, 50 हज़ार भारतीयों ने अपने प्राण गवांए. आज़ादी के बाद 1948, 1962, 1965, 1971 और 1999 में भारत ने अपने दो पड़ोसियों पकिस्तान और चीन के साथ युद्ध किए.

यह संक्षिप्त उल्लेख मैंने युद्ध से होने वाली जान और माल की तबाही अथवा मनुष्य पर पड़ने वाले उसके दारुण प्रभावों को दिखाने के लिए नहीं किया है. वह समस्या अपनी जगह है. साम्राज्यवादी लूट रहेगी तो युद्ध रहेंगे. लूट करने वाले देश लूटे जाने वाले देशों को आपस में लड़ाते रहेंगे. संसाधनों पर वर्चस्व के लिए वे आपस में भी भिड़ते रहेंगे. लूटे जाने वाले देशों में साम्राज्यवादी हितों का दलाल तबका खुद देश की मेहनतकश जनता के साथ युद्ध छेड़े रहेगा. यहां केवल यह कहना है कि युद्धों की सभ्यता में जीते हुए भी भारत के मुख्यधारा नागरिक समाज, जिसमें ज्यादातर बौद्धिक समाज भी समाहित है, की युद्ध के बारे में गंभीर समझ नहीं मिलती. न अपने लिए, न देश के लिए, न दुनिया के लिए. न उसे दुनिया में फैले युद्ध-उद्योग के बारे में जानकारी है, न फिलहाल चलने वाले अथवा संभावित युद्धों में भारत की क्या भूमिका रहेगी, इसकी जानकारी है.

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से ही कहा जाता है कि अगला विश्वयुद्ध, उसका जो भी स्वरूप रहे, एशिया की धरती पर लड़ा जाएगा. उस युद्ध में भारत की भूमिका और उस युद्ध के बाद भारत कैसा होगा, इस बारे में भारत के नागरिक समाज की कोई सोच देखने-सुनने को नहीं मिलती. क्योंकि वह यह तक नहीं जानता है कि उपनिवेशवादियों से पहले के आक्रमणकारियों और

उपनिवेशवादियों को भारत की सेनाओं को परास्त करने में कामयाबी क्यों मिलती चली गयी. भारत की आज़ादी के दो बड़े युद्धों - 1857 का सशस्त्र संग्राम और 1942 का जनसंग्राम - के बारे में वह प्रायः निरक्षर है.

यह हो सकता है कि कोई नागरिक समाज देश की मजबूती और खुशहाली के लिए युद्ध की तरफ से आंख फेर कर अन्य क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करे. दुनिया में जापान समेत ऐसे कई देश हैं. भारत में तो गांधी का सहारा भी लिया जा सकता है कि हम हिंसक संघर्ष में विश्वास करने वाले समाज नहीं हैं. लेकिन सैन्य-जगत की स्थिति और गति से अनभिज्ञ भारत के नागरिक समाज का सपना भारत को जल्द से जल्द महाशक्ति के रूप में देखने का है. बल्कि नागरिक समाज का एक हिस्सा भारत के विशाल बाज़ार और उसके साथ जुड़ी अर्थव्यवस्था की चकाचौंध में भारत को महाशक्ति मानता है. भारत का यह नागरिक समाज तरह-तरह से देशभक्ति का प्रदर्शन करता हुआ 'युद्धं देहि' की उग्र ललकार से भरा नज़र आता है. इस सिलसिले में अब स्थिति यह हो चली है कि वह गोल बना कर, यहां तक कि कई बार अकेले ही, 'घर में छिपे गद्दारों' पर हमला कर बैठता है. ऐसे तत्वों द्वारा खुलेआम गाली-गलौच, महिलाओं के प्रति भी, आम बात हो गयी है.

कहने की जरूरत नहीं कि वास्तविकता में भारत के नागरिक समाज को अपने देश की पहचान नहीं है. न उसका देश के प्रति लगाव है. कुरबानी देने की बात वह सोच भी नहीं सकता. इसके बावजूद वह पूरे देश का ठेकेदार बन कर दिन-रात देशभक्ति और युद्ध के उन्माद से ग्रस्त नज़र आता है. कहने को यह भारत का नागरिक समाज है, लेकिन इसके सदस्य भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और भारतीय संविधान की कसौटी पर भारत के अवैध नागरिक ठहरते हैं. किशन पटनायक के शब्दों में इनके दिमाग में गुलामी का ऐसा छेद हो गया है जिसकी मरम्मत आसान काम नहीं है. मैंने अपने पत्रकारी लेखन में भारतीय नागरिक समाज से जुड़ी इस परिघटना पर पिछले 20-25 सालों में कई बार लिखा है. देखने में यही आ रहा है कि इस चिंतनीय परिघटना में कमी आने बजाय तेजी आती जा रही है. लिहाज़ा, दोहराव के बावजूद, यहां संक्षेप में एक बार फिर से इस पर विचार किया गया है.

## 2.

नई आर्थिक नीतियों के साथ जो 'नया भारत' बनना शुरू हुआ, उसमें नागरिक समाज पर देशभक्ति भूत की तरह सवार होती चली गई है. इसके सामानांतर उसका पहले से ही संकुचित नागरिकता बोध और ज्यादा संकुचित होता गया है, और इंसानियत की खूबियां भी घटती गई हैं. सभी जानते हैं पिछले तीन दशकों में देश के संसाधनों और श्रम की निगम पूंजीवाद (कारपोरेट

कैपिटलिज्म) के हक में उत्तरोत्तर भारी लूट हुई है. नरेंद्र मोदी के शासन में यह प्रक्रिया अंधी दौड़ में बदल चुकी है. संविधान की मान्यताओं के खिलाफ सार्वजनिक क्षेत्र की कीमत पर प्राइवेट क्षेत्र को खड़ा किया जा रहा है. समस्त लोकतान्त्रिक संस्थाओं को विनष्ट किया जा रहा है. लोकतंत्र भीड़तन्त्र में बदलता जा रहा है. भारत नवसाम्राज्यवादी शिकंजे में बुरी तरह से फंस चुका है. राजनीतिक नेतृत्व द्वारा आज़ादी, संविधान, संसाधन, श्रम, संस्थाएं गंवाते जाने का यह कारनामा नागरिक समाज की सहमति के बिना नहीं हो सकता था. लेकिन नागरिक समाज अपने को देश का गद्दार या साम्राज्यवादी ताकतों का गुलाम मानने को तैयार नहीं है. क्योंकि उसने पिछले तीन दशकों में अच्छी-खासी आर्थिक-सामाजिक हैसियत बना ली है. जैसे-जैसे भारत के नागरिक समाज की गद्दारी और गुलामी बढ़ती जाएगी, उसकी देशभक्ति का प्रदर्शन भी नए-नए रूपों में बढ़ता जाएगा. निगम पूंजीवाद ऐसे प्रदर्शन को पूरी हवा देगा, ताकि लूट से तबाह विशाल आबादी देशभक्ति का नशे की तरह सेवन करती रहे. नागरिक समाज इस आबादी को बताता रहता है कि उनकी समस्याओं का कारण निगम पूंजीवाद की लूट नहीं, मुसलमान हैं. हालांकि, माहौल का ऐसा असर है कि मुसलमान देशभक्ति दिखाने की होड़ में किसी से पीछे नहीं रहना चाहते!

नागरिक समाज की देशभक्ति के आदर्श समय-समय पर बदलते रहते हैं. लेकिन उसके आदर्श-पुरुष के लिए एक आधारभूत शर्त है - उसकी आस्था निगम पूंजीवाद में होनी चाहिए. पिछले कुछ सालों से उसके आदर्श नरेंद्र मोदी और आरएसएस हैं. पहले आरएसएस को लें. आरएसएस की अपने स्थापना काल से ही बलवती इच्छा रही है कि उसे देशभक्त मान लिया जाए. कहते हैं परमात्मा जब देता है, छप्पर फाड़ कर देता है. आज का परमात्मा निगम पूंजीवाद है. उसकी कृपा से आरएसएस आज देशभक्ति का प्रमाणपत्र बांट रहा है! वह बताता है कि उसके स्वयंसेवकों की सेना भारतीय सेना से पहले मोर्चा सम्हाल सकती है! गाय के गोबर से तैयार किये गए बंकर डोकलम में चीन का आक्रमण विफल कर देंगे! राष्ट्र-रक्षा यज्ञ करने से देश सुरक्षित हो जाता है! सैनिकों को शूरवीरता बढ़ाने के लिए नित्य गीता-रामायण का पाठ करना चाहिए! अपने कुछ नेताओं के माध्यम से वह यह भी बता देता है कि सैनिक देश की सुरक्षा में मरने के लिए ही होते हैं! और यह भी कि सैनिकों के मरने से बने माहौल में भाजपा चुनाव में कितनी सीटें जीत जाएगी! पाकिस्तानी खुफिया एजेंसी आईएसआई के लिए जासूसी करते हुए उसके कार्यकर्ता पकड़े जाते हैं, लेकिन उससे आरएसएस की देशभक्ति पर कोई फर्क नहीं पड़ता! क्योंकि उसकी नज़र में वे 'पवित्र पापी' हैं!

नरेंद्र मोदी, जिन्होंने प्रधानमंत्री बनते ही रक्षा-क्षेत्र में शत-प्रतिशत विदेशी निवेश कर दिया, बताते हैं कि व्यापारी देश के लिए सैनिकों से ज्यादा जोखिम उठाते हैं! वे यह भी बताते हैं कि

उनकी नस-नस में व्यापार दौड़ता है! 'देशभक्त' व्यापारी उनके साथ देश-विदेश में दौड़ लगाते नज़र आते हैं! शायद इसी दौड़ा-दौड़ी में नरेंद्र मोदी एक दिन बिना राजकीय कार्यक्रम के पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज़ शरीफ से मिलने पहुंच गए! रफाल विमान सौदे में सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी हिन्दुस्तान एरोनौटिकल लिमिटेड (एचएएल) का नाम हटा कर उद्योगपति अनिल अम्बानी की कंपनी का नाम चढ़ा दिया! वे जिस तरह धन्नासेठों से अपनी यारी की खुलेआम और सगर्व घोषणा करते हैं, उसी तरह का व्यवहार सेना के अभियानों के बारे में भी करते हैं! व्यापारियों का हित उनके लिए सर्वोपरि है, बशर्ते वे बड़े व्यापारी हों! जोखिम उठाने वाले, कि देश छोड़ कर विदेश भाग जाएं!

ऐसे नरेंद्र मोदी भारत के नागरिक समाज की देशभक्ति का आदर्श हैं. देशभक्ति के मामले में उनके प्रति नागरिक समाज का पूजा-भाव किसी भी सवाल से परे है. लिहाज़ा, नरेंद्र मोदी खुद को भी सवालों से ऊपर मानते हैं और आश्वस्त रहते हैं कि उनके पुजारी बखूबी सारा काम सम्हाल लेने में सक्षम हैं! तभी पुलवामा में 14 फरवरी को सुरक्षा बलों पर हुए आतंकी हमले के बाद वे पुजारियों को खुली छूट देकर अपने ऊपर फिल्म बनवाने, उदघाटन करने और चुनावी रैलियों में भाषण देने में व्यस्त बने रहे!

पुलवामा हमले के बारे में थोड़ी चर्चा की जा सकती है. किसी भी व्यवस्थित देश में सुरक्षा बल के सैनिकों की आतंकी हमले में मौत की जांच का काम सबसे पहले और पूरी गंभीरता के साथ किया जाता. और अभी तक हमले से जुड़े कुछ सुराग हाथ में आ जाते. लेकिन भारत में ऐसा कुछ नहीं हुआ. अभी तक हमले में शहीद होने वाले सैनिकों की संख्या भी जनता के सामने स्पष्ट नहीं है. कहीं 42 लिखा मिलता है, कहीं 44 और कहीं 40 से ऊपर. पुलवामा हमले में अगर चूक शासन की तरफ से भी हुई है, जैसा कि हमले के बाद राज्यपाल महोदय ने कहा, तो उसका ईमानदारी से पता लगाया जाना चाहिए था. जवाबदेही तय की जानी चाहिए थी, और कानून के तहत दोषियों को सजा दी जानी चाहिए थी. जैशे मोहम्मद द्वारा हमले की जिम्मेदारी लेने की सच्चाई का भी आगे की सैन्य सुरक्षा की दृष्टि से पता लगाया जाना चाहिए था. लेकिन अफसोस की बात है कि 'युद्धं देहि' के शोर में 14 फरवरी डूब गया. उनकी मौत का कोई मोल नहीं है, क्योंकि वे सैनिक निगम पूंजीवाद की लूट से मुटाए नागरिक समाज के सदस्य नहीं थे. हां, राजनीति करने के लिए उनका इस्तेमाल किया जा सकता था, सो बखूबी कर लिया गया है!

लोकतंत्र में सैन्य प्रतिष्ठान राजनीतिक नेतृत्व के तहत काम करता है. लेकिन साथ ही यह भी जरूरी है कि राजनीतिक नेतृत्व कम से कम देश की सुरक्षा के मामले में साम्राज्यवादी शक्तियों के दबाव में काम नहीं कर रहा हो. भारतीय वायुसेना ने 26 फरवरी को मुंह-अंधेरे पाकिस्तान की

सीमा में प्रवेश करके बालाकोट स्थित जैशे मोहम्मद के ट्रेनिंग कैंप पर बम गिराए. विदेश सचिव के बयान के मुताबिक वायुसेना की यह 'गैर-सैन्य प्रीडम्पटिव कार्रवाई' (नोन-मिलिट्री प्रीडम्पटिव एक्शन) थी. पुलवामा हमले के बदले में भारत कुछ बड़ा करेगा, यह बयान अमेरिका के राष्ट्रपति दे चुके थे. भारतीय वायुसेना की कार्रवाई के बदले में पाकिस्तान की वायुसेना ने भारत की सीमा में दाखिल होकर सैन्य अड्डे पर हमला किया. लड़ाकू विमान मिग 21 के क्षतिग्रस्त होने से पायलट अभिनन्दन वर्तमान को पाकिस्तान की सीमा में उतरना पड़ा. अमेरिकी राष्ट्रपति ने फिर बताया कि पाकिस्तान से अच्छी खबर आने वाली है. इंदिरा गांधी के बाद से देश के सभी प्रधानमंत्रियों के कार्यकाल में कमोबेस अमेरिका भारत का भाग्यविधाता बना रहा है. 1 अक्टूबर 2001 को जैशे मोहम्मद ने श्रीनगर में विधानसभा पर आतंकी हमला किया था, जिसमें 27 लोग मारे गए थे और 60 घायल हुए थे. प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने चिठ्ठी लिख कर अमेरिका के राष्ट्रपति जॉर्ज बुश से पकिस्तान को समझाने की गुहार लगायी थी. तब तक 9/11 हो चुका था और वाजपेयी ब्रिटेन के प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर के साथ आतंकवाद के खिलाफ अमेरिका की 'नई जंग' में सबसे पहले शामिल हो चुके थे. लेकिन अमेरिका तब भी पकिस्तान के साथ था, आज भी साथ है. अमेरिका पाकिस्तान को डिक्टेट करे यह समझ आता है, लेकिन वह भारत को कैसे निर्देश दे सकता है?

14 फरवरी से लेकर आज तक घटे घटनाक्रम में नागरिक समाज की ओर से निरंतर युद्ध की मांग होती रही. युद्ध न होना था, न हुआ. अलबत्ता, एक पखवाड़े में 50 से ज्यादा भारतीय सैनिक वीरगति को प्राप्त हो चुके हैं. अभी यह भी पक्का नहीं है कि सीमा के उस पार इससे ज्यादा संख्या में आतंकवादी मार गिराए गए हैं. बालाकोट में गिराए गए बम इजरायल से खरीदे गए थे. युद्ध मांगने वालों ने पूरी कवायद में यह चर्चा नहीं की कि एक समय सोवियत रूस से हथियार लेने और उनके बल पर पाकिस्तान से युद्ध जीतने वाला भारत इजरायल से हथियार क्यों खरीदने लगा? क्या भारत की सुरक्षा हमेशा के लिए विदेश से खरीदे गए हथियारों के भरोसे रहेगी? क्या हथियार बेचने वाली ताकतें भारत को ऐसे हथियार मुहैया कराती रहेंगी जिनसे संभावित तीसरे विश्वयुद्ध या किसी भी युद्ध में वह अपनी सीमाओं को सुरक्षित रख सके? क्या भारत की सुरक्षा सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों की कीमत पर याराना पूंजीवाद के खिलाड़ियों द्वारा मुनाफे की हविस से आनन-फानन में कायम की गई निजी कंपनियों के भरोसे छोड़ दी जाएगी? क्या युद्ध मांगने वाले नागरिक समाज का 'मक्का' अमेरिका, जिसकी वह पिछले 40 सालों से पूजा करने में लगा है, पाकिस्तान को हथियार और अन्य आर्थिक सहायता देना बंद कर देगा? और क्या खरीदे गए हथियारों के बल पर भारत महाशक्ति बन पायेगा?

पुलवामा की घटना के 12 दिन बाद जो हवाई कार्रवाई हुई उसमें यह ठीक खयाल रखा गया कि हमले में नागरिक हताहत न हों. लेकिन आतंकवादियों की सरपरस्त पाकिस्तानी सेना के ठिकानों को हमले के लक्ष्य से बाहर रखने का युद्ध में क्या औचित्य बनता है? युद्ध तो दो देशों की दो सेनाओं के बीच में होता है. अगर युद्ध की मांग करने वाले इस कार्रवाई को आतंकवाद की कमर तोड़ देने वाली मान रहे हैं, तो उन्हें आतंकवाद के पाकिस्तान स्थित और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विद्यमान नेटवर्क की जानकारी नहीं है. प्रधानमंत्री के खून में व्यापार बहता है. वणिक वृत्ति से युद्ध नहीं लड़ा जा सकता, युद्ध के नाम पर राजनीतिक व्यापार किया जा सकता है. युद्ध वीर रस की कला है. वीर रस का स्थायी भाव 'उत्साह' होता है. काव्यशास्त्रियों ने बताया है कि यह भाव उत्तम प्रकृति के स्त्री-पुरुषों में ही पाया जाता है. जिनके विवेक को गुस्सा आक्रांत कर लेता है, वे युद्ध से जुड़े वीरता के भाव में नहीं जी सकते.

दरअसल, 'युद्धं देहि' की ललकार देने वाले और उनके नायक घृणा की भावना से परिचालित हैं. उनकी घृणा किसके प्रति है, यह बताने की जरूरत नहीं है. हर इंसान अपनी भावनाओं को अच्छी तरह जानता है. वर्ना 1962 के युद्ध में चीन से हुई पराजय के बाद से भारत की 20 हजार वर्ग किलोमीटर धरती चीन के कब्जे में है. भारत की संसद ने उसे वापस लेने का सर्वसम्मत प्रस्ताव पारित किया हुआ है. लेकिन भारत का युद्धोन्मादी नागरिक समाज उसके लिए कभी युद्ध की मांग नहीं करता. वह अमेरिका के बहिष्कार की भी कभी मांग नहीं करता, जो ओसामा बिन लादेन को अपने देश में छिपा कर रखने वाले पाकिस्तान का शुरू से सरपरस्त बना हुआ है. कहने का आशय यह है कि युद्ध मांगने वाला नागरिक समाज राष्ट्रीय भावना से किये जाने वाले युद्ध के मूल चरित्र (बेसिक स्पिरिट) से अनभिज्ञ है. बुजदिल और गुलाम दिमाग वाला नागरिक समाज कलह कर सकता है, युद्ध नहीं कर सकता. इसका सबसे चिंतनीय पहलू यह है कि लम्बे समय तक घृणा से परिचालित नागरिक समाज का सेना के मनोजगत पर गलत असर पड़ सकता है.

### 3.

आरएसएस और मोदी को देशभक्ति का आदर्श मानने वाले केवल आरएसएस/भाजपा तक सीमित नहीं हैं. आरएसएस/भाजपा के समर्थकों से ज्यादा बड़ी संख्या दूसरी पार्टियों से जुड़े लोगों की है. उनके साथ वे तमाम उच्च शिक्षा प्राप्त प्रोफेशनल्स और सरकारी अफसर भी जुड़ जाते हैं, जो अपनी सारी काबिलियत के बावजूद मूलतः राजनीतिक निरक्षर (पोलिटिकल इलीट्रेट) होते हैं. उन सबसे आरएसएस/भाजपा ब्रांड देशभक्ति को बड़ी ताकत हासिल होती है. नागरिक समाज का धर्मनिरपेक्ष प्रगतिशील खेमा आरएसएस/भाजपा ब्रांड देशभक्ति का विरोधी है. लेकिन वह हाशिये

पर चला गया है. आरएसएस/भाजपा के खिलाफ कुछ पुराने प्रचलित तथ्यों को दोहराने या सोशल मीडिया पर 'भक्तों' को चिढ़ाने वाली फुलझड़ियां छोड़ने के अलावा कुछ नहीं कर पाता. उसकी ताकत नहीं बन पाती, इसके कई कारण हैं. सर्वोपरि, वह अंदरखाने निगम पूंजीवाद का समर्थन करने के चलते आरएसएस/भाजपा के साथ खड़ा हो जाता है. इसके अलावा आरएसएस से निरंतर 'युद्ध' की स्थिति बनाए रखने की उसकी रणनीति भी आरएसएस/भाजपा को ही मजबूत बनाती है. भाजपेतर राजनीतिक पार्टियों और नेताओं के साथ उसका अवसरवादी व्यवहार निगम पूंजीवाद का निर्णायक विकल्प खड़ा करने के लिए प्रयत्नशील राजनीतिक धारा को बाधित करता है, और इस तरह आरएसएस/भाजपा को स्थायी फायदा पहुंचता है. इस खेमे के ज्यादातर सामाजिक न्यायवादी-बहुजनवादी बुद्धिजीवी और एक्टिविस्ट हिंदू धर्म और देवी-देवताओं को गाली देकर आरएसएस/भाजपा की राजनीतिक ताकत को बढ़ाते हैं. धर्मनिरपेक्ष-प्रगतिशील खेमे में ऐसे व्यक्ति और समूह भी हैं, जो भारतीय राज्य (इंडियन स्टेट) के प्रति हमेशा गुस्से से भरे होते हैं. गुस्से में वे राज्य में कायम सरकारों और राज्य के बीच का फर्क नहीं रख पाते. उनका गुस्सा उन्हें भारतीय राज्य के ही विरोध में ले जाता है. इसका फायदा आरएसएस/भाजपा को मिलता है. नागरिक समाज में एक विशेष समूह भारतीयतावादियों का भी होता है. वे अपने को गांधी से जोड़ते हैं. अक्सर देखा गया है कि उनमें से ज्यादातर गांधी को विकृत करते हैं, और आरएसएस उनकी अंतिम शरणस्थली बनता है. इधर एक टोली, जो अपने को विचारधारा-निरपेक्ष बताती है, सीधे कारपोरेट पूंजीवाद की कोख से निकल कर आई है. उसकी भगवा से लेकर लाल तक लंबी रेंज है. हालांकि, देशभक्ति का ब्रांड उसने आरएसएस/भाजपा वाला ही रखा है.

धर्मनिरपेक्ष प्रगतिशील खेमा पिछले तीन दशकों में देशभक्ति का आरएसएस/भाजपा से अलग आख्यान नहीं रच पाया है. अब उसकी यह इच्छा भी नहीं लगती. वह 'आईडिया ऑफ़ इंडिया' की ऐसे बातें करता है गोया भारत ज़मीन पर नहीं, किसी किताब में रहता हो! वह अपनी बुद्धि, जिस पर वह कभी शंका नहीं करता, का इस्तेमाल या तो कुछ अस्मितावादी विमर्शों और गठजोड़ों (पिछड़ा-मुस्लिम गठजोड़, दलित-मुस्लिम गठजोड़ आदि) में करता नज़र आता है या पद-पुरस्कारों की छीना-झपटी में. सामने कोई प्रामाणिक विकल्प नहीं होने पर आरएसएस/भाजपा ब्रांड की नकली, खोखली और पाखंडी देशभक्ति का ही सिक्का चलना है. वही चल रहा है. जब तक यह सिक्का चलेगा, देश के सामने दरपेश वास्तविक संकट - आज़ादी पर कसा हुआ नवसाम्राज्यवादी शिकंजा - से मुक्ति नहीं पाई जा सकती. आरएसएस/भाजपा की यह बड़ी 'उपलब्धि' है कि उसने कारपोरेट पूंजीवाद के साथ गठजोड़ बना कर देश में एक बुजदिल और गुलाम दिमाग को प्रतिष्ठा दिला दी है.



(समाजवादी आंदोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के फेलो हैं)